IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

संगीत के कलात्मक स्वरूप का आधार–ज्ञान युक्त सृजन

अनादि मिश्रा
शोधार्थी (संगीत विभाग), वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

कला शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों ने अपनी कल्पना द्वारा इसे विभिन्न तरह से परिभाषित किया है। कला एक प्रकार का कृतिम निर्माण है जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। ''कला सृजन की क्रिया नहीं, प्रकृति के रूपान्तरण की क्रिया है। कलाकार अपनी प्रतिभा के बल से जड़ को चेतन बनाता है, और वस्तु को अपनी मानवता से ओत–प्रोत करके उसे रसास्वादन के योग्य बना देता है। कला के सौन्दर्य का सत्य प्रकृति की प्रतिकृति होकर सिद्ध नहीं होता। कला जहाँ तक प्रकृति की अनुकृति होगी, वहां तक उसका सौन्दर्य असत्य होगा। कला का सौन्दर्य अनुकरण न होकर भी–अनुकरण न होकर है–सत्य हो सकता है, क्योंकि कलाकार ऐताहासिक सत्य स्थापना नही करता, वह अपने अन्तरलोक की मानवता और सत्यम् अनुभूति का कला द्वारा उद्घाटन करता है। कला का सत्य कलाकार की मानव अनुभूति का सत्य है।''[1]

कला जीवन को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् से समन्वित करती है। इसके द्वारा ही बुद्धि आत्मा का स्वरूप झलकता है। कला उस क्षितिज की भाँति है जिसका कोई छोर नही है, इतनी विशाल और विस्तृत है कि अनेक विधाओं को अपने में समेटे है। कला संवेदनात्मक, भावनात्मक, गुण–धर्म और मूल्यों का अध्ययन है।

कला में मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति ही कला सृजन के लिये मूल प्रेरणा है। कला–सौन्दर्य की मानवता ही कला को महत्व और औचित्य प्रदान करती है। यही इसका प्राकृतिक सौन्दर्य से अन्तर और अतिशय है और इस प्रकार मानवता ही कला सौन्दर्य के परीक्षण के लिये अचूक कसौटी है। कला–सौन्दर्य मानवता के कारण ही प्राकृतिक सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक मार्मिक होता है। कला का शाब्दिक अर्थ मानक विशाल हिन्दी शब्द कोश के अनुसार– ''कला स्त्री, (सं.) अंश, भाग, चन्द्रमा या उसके प्रकाश का सोलहवाँ भाग, सूर्य या उसके प्रकाश का

बारहवां भाग, समय का एक विभाग जो तीस काष्ठा का होता है, शशि के तीसवें अंश का साठवाँ भाग, शशि चक्र के एक अंश का साठवाँ भाग, छंद शास्त्र में मात्रा, किसी कार्य को भली भांति करने का कौशल विशेषतः ऐसा कार्य जिसके संपादन के लिये ज्ञान के अतिरिक्त कौशल और अभ्यास की आवश्यकता हो, (आर्ट), ये चौसठ गिनाई गई है।''[2] अंग्रेजी भाषा में कला को 'आर्ट' कहते है– ''(art) [O.F. art, L, ars artem (stem ar-, to fit] सं० 1. कला (मा. 2 मी), कला–कौशल, शिल्प, शिल्प–विद्या, व्यवसाय, हुनर, कारीगरी, 2. (विशे. प्रकृति के प्रतिकूल) मानवीय कौशल, निपुणता, कुशलता, दक्षता, 3. अनुकरणात्मक और आकृति मूलक कार्यो में प्रयुक्त चार्तुय (जैसे चित्रकला, मूर्तिकला आदि) 4. (गुण.) कलात्मक रचना वाला; 5. कलाकृति, कला वस्तु, कोई चीज़ जिसमें कौशल का प्रयोग किया गया हो; 6. (बहु. व.) विद्या या शिक्षा की कतिपय शाखाएँ, (जैसे साहित्य, इतिहास आदि) सामान्य शिक्षा; 7. किसी शास्त्र या विज्ञान का प्रायोगिक रूप, व्यावहारिक उपयोग; 8. औद्यौकि व्यवसाय; 9. औद्योगिक वृति; 10. उद्योग–संघ, श्रम–शिल्पियों का समूह, कारीगरों का दल; 11. कुशलता चतुराई, युक्ति, काम करने का ढंग; 12. हुनर, ढंग आदि आदि।''[3]

कला प्रकृति की अपूर्णताओं की पूर्ति करती है, और मनुष्य को वह आनन्द प्रदान करती है जिसके लिये प्रकृति स्वयं असमर्थ है। कला मनुष्य के लिये आस्वादन के क्षेत्र को विस्तृत करती है। कला का मूल स्त्रोत केवल प्रकृति ही नही, मानव भी है। इसीलिये कला सृजन की प्रक्रिया केवल अनुकरण ही नही, अभिव्यक्ति है। कला सृजन के पीछे, अरूप को रूप देने की प्रेरणा, अव्यक्त को व्यक्त, अमूर्त को मूर्त, आवाक को सवाक बनाने की प्रवृति है। ''कला का आविर्भाव और सृजन और इसके पीछे रहने वाली मूल प्रेरक शक्ति, मानव की आत्मा में पलते है। कला का मूल और आध्यात्मिक 'मनुष्य' है। चित्र और संगीत का रूप धारण करने से पूर्व वह कलाकार की मानवात्मा का रूप धारण करती है। उसकी चेतना से चेतना, उसके प्राणों से जीवन का वरदान, उसकी वेदना से तीव्रता, उसकी आंतरिक दीप्ति से प्रकाश ग्रहण करती है। कलाकार की आध्यात्मिक प्रसव – वेदना से परिचित व्यक्ति तो कला को उसके उत्पादक के रक्त–मास हृदय से बना हुआ 'आत्मज' ही मानेंगे।''[4]

कला मानव के गुणों की अभिव्यक्ति है। कलाकार की मनुष्यता से ही उसे मान्यता प्राप्त होती है। मानवता के अंतराल असीम और अनन्त है। इसमें अनेक रस है, अनेक ज्योतियां है, अनेक आदर्शों का वैभव है। इसमें विकास भी होता है, नवीनता भी आती है, अतएव मानवता के विकास – विस्तार नवोन्मेष के साथ कला का भी विकास विस्तार होता है। प्रत्येक युग की कला अपने युग के मानव के गुणों अथवा मानवता की प्रतीक होती है। कलाकार अपने व्यक्तित्व में, अपने युग का प्रतिबिम्ब देखता है। उसके व्यक्तित्व में उसके गुण, आदर्श, अवसाद, गान, और क्रंदन, आशा और अभिलाषा सभी स्पष्ट हो उठते है। कलाकार युग के भी ऊपर उठता है, और मानव जगत् ही नही, सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के मूल प्रेरणाओं को भी आत्मसात् करता है। वह अपने जीवन की स्फूर्ति में जहां तक पहुँच पाता है वहाँ तक उठकर जीवन की अनन्तता और इसकी विविध संवेदनाओं का अनुभव करता है। इन्ही को मूर्त करना कला कहलाता है।

''कला एक रूप रचना है। रूप एक अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति की प्रेयणीयता में सौन्दर्य निहित होता है। सुरूप सापेक्ष गुण है, असक्ति है, एक आकर्षण है। ये मानव की सामान्य अनुभूति है।''[5]

कला हमें इस लोक से दूर ले जाकर कल्पना और भावना के आलोक–लोक में ले जाती है, जहाँ हम सभी सांसारिक सुख–दुख को भूल जाते है। संगीत में ये क्षमता सर्वाधिक है, इसलिये संगीत सब कलाओं का आदर्श है। प्रत्येक कला अपने परम विकास की अवस्था में संगीत कला की धारा में ही बहने लगती है।

संस्कारिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्ति के द्वारा जब प्रकृति प्रदत्त तत्व में, किसी गुण या कौशल के कारण विशेष उपयोगिता और सुन्दरता आ जाती है, तब वह कलात्मक हो जाती है। कला के दो भेद है–एक उपयोगी कला, दूसरी ललित कला। उपयोगी कला में लुहार, सुनार, जुलाहे आदि व्यवसायिक संबंधी कलाएं आती है। ललित कला के मुख्यतः पाँच भेद माने जाते है। वास्तु कला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्य कला और संगीत कला। दोनों कलाओं में ललित कला श्रेष्ठ है क्योंकि इसका गहरा संबन्ध हमारी सूक्ष्म भावनाओं से है। लालित्य या सौन्दर्य के आश्रय से व्यक्त होने वाली कलाएं ललित कला कहलाती है, अर्थात् वह कला जिसके अभिव्यंजन से सुकुमारता और सौन्दर्य की अपेक्षा हो। ललित कलाओं का वर्गीकरण अलग–अलग युगों में अलग–अलग विधियों से होता रहा।

सामवेद में ईश्वर प्रदत्त चौसठ कलाओं का उल्लेख है–

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्मां प्रतरीतोषसां दिवः।

प्राणा सिन्धूनां कलाशान् अचिक्रददिन्द्रस्यहार्द्याविशन्मनीषिमिः।।1।।

(वृषा) इन्द्रियों में शक्ति देने वाला (मतीनां) ज्ञान आदि का (पवते) संसार को पवित्र करता है (विचक्षणः) द्रष्टा (सोमः) जीवात्मा (अह्मां) दिनों का (प्रतरीता) विस्तार करने वाला (उषसां) उषा कालों का (दिवः) द्युलोक का (प्राण) जीवन देने वाला (सिन्धूनां) नाड़ियों में (कलाशान्) 64 कलाओं का (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (इन्द्रस्थ) परमेश्वर की दी हुई (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ (मनीषिमिः) मन की सारी शक्तियों के साथ।।

भावार्थ– इन्द्रियों में शक्ति देने वाला, ज्ञान आदि का विस्तार करने वाला दिन, उषाकाल तथा द्यु आदि लोक द्रष्टा नाड़ियों में बल देने वाला जीवात्मा मन की सारी शक्तियों के साथ हृदय में प्रविष्ट होता हुआ संसार को पवित्र करता है और परमेश्वर की दी हुई 64 कलाओं का उपदेश करता है।।''[6]

''शैवतंत्र एवं वात्स्यायन–कृत काम सूत्र में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है। शुक्रनीति में भी कलाओं की संख्या 64 ही मानी गई है। प्रबन्ध–कोशों में कलाओं की संख्या 72 दी गई है। जैन–सूत्रों में इनकी संख्या 72 ही वर्णित है। बौद्ध ग्रन्थों में कलाओं की संख्या 84 मानी गयी है। श्रीमद्भागवत में महानायक भगवान श्री कृष्ण को 16 कलाओं से पूर्ण माना गया है। भारतीय परम्परा में नाट्यकला का सर्वाधिक महत्व स्वीकार किया गया है। कालान्तर में भारतीय परम्परा के अनुसार कलाओं की संख्या केवल 5 रह गई। जिन्हे ललित कलाओं के नाम से अभिहित किया जाता है।''[7]

प्राचीन भारत में कलाओं के विभिन्न प्रकार को साहित्यिक ग्रन्थों में दर्शाया गया है। कालान्तर में इन कलाओं में परिवर्तन और नवोन्मेष होता गया। वर्तमान काल में ललित कलाओं का प्रचार एवं प्रसार है, जिसमें उपरोक्त पाँच कलाएँ मुख्य है। इन कलाओं को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है– 1. गतिशील कलाओं के अन्तर्गत संगीत और काव्य आते है, और स्थिर कलाओं में चित्र कला, मूर्त्तिकला और वास्तुकला आते है। भारतीय संस्कृत ग्रन्थों में ललित कला का वर्णन प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः ललित कला जिसको अंग्रेजी में 'Fine Arts' कहते है, ये शब्द पाश्चात् विद्वानों का कला के संबंध में नवीन संस्करण है। 'मानक विशाल हिन्दी शब्द कोश'

में ललित कला की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– ''ललित कला स्त्री, (सं. ललित + कला) वह कला जिसके अभिव्यंजन में सुकुमारता और सौन्दर्य की अपेक्षा हो और जिसकी सृष्टि मुख्यतः मनोविनोद के लिये हो, जैसे संगीत, चित्रकला आदि (फाइन आर्टस)''[8]

यह परिभाषा उचित नहीं प्रतीत होती है क्योंकि कलाओं को और विशेष तौर पर संगीत कला को केवल मनोविनोद का साधन मानना भ्रमक है। भारतीय संगीत का संबन्ध विशेष तौर पर अध्यात्म और भक्ति से भी, वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक जुड़ा हुआ है।

संगीत सृष्टि की सर्व पुरातन कला है। इस अलौकिक कला की लौकिक व्याख्या करना अति कठिन कार्य है। संगीत कला एक प्रक्रिया है, इसलिये आदि में वर्तमान और भविष्य में प्रक्षेपित होता हुआ यह अनन्त प्रवाह है। मनुष्य के लिये जो कुछ उपयोगी, मूल्यवान, सारभूत वर्तमान में है, वह ज्ञात और अज्ञात रूप में उसकी भावनाओं बौद्धिक शक्ति और सत्य चेष्टा का प्रतिफल है। इस प्रक्रिया में मानव जाति ने अनेक भाँति की अनुभूतियों का भोग किया, उसमें नवीनता लाने की चेष्टा किया। इस प्रक्रिया में मानव जाति को भविष्य का मार्ग प्राप्त हुआ। मनुष्य ने अपने हृदय के भीतर विश्व को यथासाध्य खींच कर जो–जो अनुभूतियां पाई, उनमें नवोन्मेष करके मिट्टी, पत्थर, धातु अथवा संगीत ध्वनियां एवं भाषा आदि को उपादान बनाकर उन्हें ही अपने मनोभावना द्वारा कलात्मक रूप में चित्रित करने की चेष्टा की। परिणाम स्वरूप हमारे पास ज्ञान–विज्ञान का अटूट, अतोल संग्रह है, उसी संग्रह का प्रतिफल कलात्मक स्वरूप और उसमें नवोन्मेष प्रक्रिया का आधार स्तंभ बना। सृजन करना, पुनः नव निर्माण करना, यह अनादि काल से चला आ रहा है। सृष्टि प्रदत्त तत्वों में नवोन्मेष करके ही संगीत के अस्तित्व को एक कला की संज्ञा मानव ने ही प्रदान की।

ईश्वर प्रदत्त योग्यता द्वारा मनुष्य ने अपनी–अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये कला के कई माध्यम खोजे हैं। विभिन्न प्रकार की भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिये मानव को अपने अन्दर छिपी योग्यता को कागज, रंग, अभिनय, भाषा स्वरों द्वारा दर्शाने की प्रक्रिया करता है। किसी कला के सृजन, विकास, प्रगति और नवोन्मेष के लिये विधाता ने मनुष्य के अन्दर एक महान शक्ति का निर्माण किया है। इसको हम अनेक कारणों के साथ मानव की सुयोग कल्पना शक्ति कहते है। करूणामय परमात्मा की भिन्न–भिन्न शक्तियों को अलग–अलग कलाओं के रूप में हम जानते है। समस्त कलाएं परमात्मा के ही अंग है। संगीत का भी अमृत स्वरूप परब्रह्म ने ही मानव जाति को ही एक अमूल्य निधि प्रदान किया है। प्रकृति प्रदत्त संगीत कला आदि कालीन कला है।

मानव द्वारा संगीत को कलात्मक स्वरूप प्रदान कराना प्रकृति की मधुरतम् अभिव्यक्ति है। सृष्टि प्रदत्त नाद ध्वनियों में नवोन्मेष करके संगीत कला का सृजन हुआ।

वस्तुतः संगीत एक ललित कला है। विद्वानों ने इस कला के अनेक प्रयोजन बताये है। यथा संगीत जीवन के लिये, सेवा के लिये, आत्मानुभूति के लिये, आनन्द के लिये विनोद के लिये, अर्थ प्राप्ति के लिए, भक्ति के लिये, अध्यात्म इत्यादि के लिये होते है। ''ललित कलाओं का विकास मानव की आत्म सिद्धि, जिज्ञासा तथा सौन्दर्य परक आवश्यकताओं की संतुष्टि के प्रयत्न में ही हुआ। कलात्मक सृजना से उसकी सौन्दर्य–पिपासा शान्त होती है। सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् का जिज्ञासु मानव पूर्णता की परितृप्ति उसके माध्यम से करना चाहता है। उसे संयोजित सौन्दर्य से विशेष प्रसन्नता की अनुभूति होती है। कला का सृजन मानव उच्च स्तर की नवोन्मेष की परितृप्ति हेतु करता है।''[9]

सारंशतः परमात्मा द्वारा निर्मित वंसुधरा सृष्टि की अनोखी सृजना है। इसके अनेक आायाम है। मनुष्य की यह कर्मभूमि है, मनुष्येतरजीव के लिये भोग भूमि है, अध्यात्मिक महापुरुषों के लिये लीला भूमि है वैज्ञानिकों के लिये अनुसंधान तथा संगीतज्ञों के लिये बड़ी प्रयोगशाला है। सभी अपने–अपने उद्देश्य को लेकर यहां आते हैं और अपनी अपनी बुद्धिमता कौशल के अनुरूप नवोन्मेष करते आ रहे है। मानव ने ज्ञान युक्त सृजन करके संगीत कला का साक्षात्कार प्राप्त किया। सृजन और नवोन्मेष की क्रिया और प्रतिक्रिया अविरूद्ध रूप से सदैव संगीत में प्रवाहित होती आ रही है। सृजन और नवोन्मेष गुणी तथा विद्वानों द्वारा ही किया जा सकता है और उसी को पूर्ण मान्यता प्राप्त होती है। अतीत के सृजनात्मक संगीत में किये गये नवोन्मेष वर्तमान का स्वरूप है, और वर्तमान में प्रचलित संगीत और उसका शास्त्र भविष्य में नवीनता लाने के लिये प्रकाश स्तम्भ रूप में मार्ग दर्शक होंगे।

सन्दर्भ

1. शर्मा हरद्वारी लाल, (1961), सौन्दर्य शास्त्र, मधु प्रकाशन, ताशकन्द मार्ग इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 123।
2. भारद्वाज शास्त्री (परिवर्तित संस्करण 2006) अशोक मानक विशाल हिन्दी शब्द कोश, अशोक प्रकाशन नई सडक़, दिल्ली, पृष्ठ सं. 126।
3. सत्य प्रकाश–मिश्रा बलभद्र प्रसाद (शक 1892: सन् 1971), मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन–प्रयाग, पृष्ठ सं. 69।
4. शर्मा हरद्वारी लाल, (1961), सौन्द्रर्यशास्त्र, मधु प्रकाशन, ताशकन्द मार्ग इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 130।
5. सिन्हा, मंजरी, (अक्टूबर 1986) छायानट अंक 39, उत्तर प्रदेश संगीत अकादमी केसर बाग लखनऊ, पृष्ठ सं. 27।
6. सरस्वती दयानन्द, (संवत् 2030), सामवेद भाषा, भाष्य सम्पूर्ण, दयानन्द संस्थान नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 80।
7. शर्मा सुनीता (1996), भारतीय संगीत का इतिहास (अध्यात्मिक एवं दार्शनिक) पब्लिशर संजय प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. 149।
8. भारद्वाज शास्त्री (परिवर्तित संस्करण 2006) अशोक मानक विशाल हिन्दी शब्द कोश, अशोक प्रकाशन नई सडक़, दिल्ली पृष्ठ सं. 596।
9. गर्ग लक्ष्मीनारायण, (सितंबर 1984), संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय हाथरस (उत्तर प्रदेश) पृष्ठ सं. 17।